खाकी

लाट साहबी सुरक्षा में एक और बलि

विकास नारायण राय

एक और लाट साहब, एक और मौत? अंग्रेज लाट साहब बेशक देश से चले गए हों लेकिन लाट साहबी की भरी-पूरी विरासत पीछे छोड़ गए हैं। कानपुर में गये हफ्ते भारत के महामहिम राष्ट्रपति के आगमन पर स्थानीय उद्यमी वंदना मिश्र की हत्या जैसी दुर्घटना के पीछे एक औपनिवेशिक इतिहास ही नहीं, काले अंग्रेजों वाला शासकीय नजरिया भी काम कर रहा था। क्या स्वतंत्र भारत में अति विशिष्ट व्यक्तियों की सुरक्षा और लोकतंत्र के बीच कभी संतुलन बन पायेगा?

23 दिसंबर 1912, अंग्रेज वाइसराय हार्डिंग चांदनी चौक में हाथी सवारी पर निकला था जब उस पर रासबिहारी बोस के निर्देशन में क्रांतिकारियों ने एक छज्जे से बम फेंका। खूनमखून हुए वाइसराय को जानलेवा चोटें नहीं लगीं। बोस स्वयं गिरफ्तारी से बचकर जापान निकल सके लेकिन उनके चार साथियों को फांसी और एक को कालापानी की सजा हुयी। इससे विशिष्ट व्यक्ति की सुरक्षा सुनिश्चित करने की कवायद में चारों दिशाओं के अलावा ऊपर से गिरने वाले खतरे के प्रति सजगता बरतने का आयाम भी शामिल होना शुरू हो गया। इस घटना के ठीक 17 साल बाद 23 दिसंबर 1929 को कलकत्ता से दिल्ली पहुँच रहे वाइसराय इर्विन की विशेष ट्रेन पर भगत सिंह के साथी भगवतीचरण वोहरा के निर्देशन में क्रांतिकारियों ने बम से हमला किया। निशाना चूक गया लेकिन इसने ट्रेन यात्रा के निहित खतरों को हमेशा के लिए सुरक्षा प्रबंधों से जोड़ दिया।

राष्ट्रपति कोविंद की 26 जून की दिल्ली से कानपुर तक ट्रेन यात्रा के दौरान, कानपुर शहर के रेल ओवरब्रिज पर सुरक्षाकर्मियों द्वारा एक गंभीर कोरोना मरीज को एम्बुलेंस में देर तक रोक रखने से उस महिला की मृत्यु हो गयी। 'कोताही' के लिए एक सब-इन्स्पेक्टर और तीन हेड कांस्टेबल निलंबित कर दिए गए, पुलिस कमिश्नर ने माफी मांगी और भविष्य में सही प्रोटोकॉल सुनिश्चित करने का वादा किया। मीडिया रिपोर्टों में बताया गया कि राष्ट्रपति को भी पीड़ा हुयी। शीर्ष राजनीतिक सत्ताधारियों की सुरक्षा के नाम पर ट्रैफिक रोकने का ऐसा बेहद दुखद परिणाम न पहली बार दिखायी दिया है और न ही यह आखिरी सिद्ध होने जा रहा है। दिसंबर 2010 में तत्कालीन प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह के काफिले के लिए दिल्ली के राजघाट पर ट्रैफिक रोके रखने के परिणामस्वरूप पेसमेकर लगने की भागदौड़ से जूझते एक दिल के मरीज ने एम्बुलेंस में दम तोड़ दिया था।

राष्ट्रपति के रूप में कोविंद का राजनीतिक प्रोफाइल एक सामान्य पृष्ठभूमि से उठे दलित समुदाय के सदस्य का रहा है जबकि मनमोहन सिंह को राजनीति के शीर्ष पर भी फूं-फां रहित शिष्ट व्यक्तित्व का स्वामी माना जाता है। लेकिन, ये अकाल मौतें बताती हैं कि लाट साहबी अंततः अपनी कीमत वसूलती ही है। कोविंद और मनमोहन सिंह जैसों को गुमान हो या न हो, लेकिन उनके सुरक्षाकर्मी, पुराने अनुभवों के आधार पर, एक चाभी भरे कठपुतले की तरह वर्ताव करते हैं। यह एक कठोर सच्चाई है कि देश भर में रोजाना हजारों/लाखों व्यक्तियों को तमाम तरह के विशिष्ट व्यक्तियों की सुरक्षा के नाम पर अनावश्यक रूप से बाधित किया जाता है।

इस लिहाज से स्वतंत्र भारत में असली सुरक्षा धमाल राजीव गांधी के प्रधानमन्त्री कार्यकाल में प्रारंभ हुआ। इंदिरा गाँधी की स्वयं उनके सुरक्षाकर्मियों द्वारा की गयी हत्या सभी के दिमाग में ताजा थी और सुरक्षा इंतजामों के नाम पर एसपीजी (पीएम सुरक्षा एजेंसी) की हर मनमानी जायज ठहरा दी जाती थी। शाही मिजाज वाले इस युवा प्रधानमन्त्री को तेज कार चलाने का शौक था और आवागमन में जरा सी भी देरी नाकाबिले बर्दाश्त मानी जाती थी। उस दौर में लगातार होने वाली प्रधानमंत्री की सड़क यात्राओं में छोटी-मोटी दुर्घटनाएं आम होती रहती थीं। यहाँ तक कि राजधानी दिल्ली तक में लोग व्यस्त समय में सड़क पर कभी-कभी घंटों प्रतीक्षा करने पर मजबूर होते थे। वह परंपरा आज भी चलती आ रही है, हालाँकि बाद में कुछ प्रधानमंत्रियों और मुख्यमंत्रियों ने हवाई मार्ग को अधिक अपनाकर इसे आम जन के लिए सुगम करने का प्रयास भी किया है।

मैं अपने 12 वर्ष के एसपीजी अनुभव के आधार पर कह सकता हूँ कि सड़क पर आम लोगों की दिक्कतें उतनी सुरक्षा की जरूरतों को लेकर नहीं प्रकट होती हैं जितनी स्वयं सुरक्षा एजेंसियों की खतरों के वस्तुपरक आकलन और तदनुसार सुरक्षा प्रबंधन में गैप के कारण होती हैं। किसी भी सुरक्षा फीचर में, दरअसल, रोकथाम और सहयोग दोनों पक्ष का संतुलन होना चाहिए। कोविंद के ताजा मामले में वरिष्ठ अधिकारी इस लिहाज से सुरक्षा प्रबंधन को डिजाइन करने और सड़क पर सुरक्षाकर्मियों तक इसे सही तरह पहुंचाने में असमर्थ रहे, जिससे चिकित्सा की प्रतीक्षा में महिला को सड़क पर जान गंवानी पड़ी जबकि अन्य हजारों लोगों का जरूरी समय बर्बाद किया गया।

बतौर प्रधानमन्त्री राजीव गाँधी की अम्बाला यात्रा के दौरान घोर असंवेदनशील सड़क सुरक्षा प्रबंधन पर स्वदेश दीपक की 1987 में प्रकाशित कहानी है- 'किसी अप्रिय घटना का समाचार नहीं'। कहानी का शीर्षक, दूरदर्शन के तत्कालीन समाचार समेटने के अंदाज से कॉपी किया गया था। घटनास्थल था स्वदेश के पड़ोस का अम्बाला कैंट का ही एक चौराहा। कहानी का अति उत्तेजित युवा आईपीएस अधिकारी और उसके सड़क प्रबंधन का शिकार बनने वाला निरीह साइकिल सवार, जो अपने बच्चे को स्कूल पहुंचाने की जल्दी में था, दोनों वास्तविक जीवन से लिए चरित्र हैं। साइकिल सवार के आलू के थैले को हड़बड़ी में हथगोलों का जखीरा मान लिया गया था। बात समझ में आने पर पुलिस अफसर की घोर ज्यादती के शिकार उस व्यक्ति को उसके जख्मों के साथ एक चारदीवारी के पीछे प्रधानमन्त्री के वहां से गुजर जाने तक सिपाही की निगरानी में छोड़ दिया गया।

राष्ट्रपति रामनाथ कोविंद : काले अंग्रेजों वाला शासकीय नजरिया कायम

इस कहानी को मैंने हरियाणा पुलिस अकादमी में 2006 में लागू किये 'संवेदी पुलिस' पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाया था। कहानी के अंत को ज्यों का त्यों यहाँ रखना चाहूँगा-

'वह जख्मी आदमी अध-उठ बैठा। उसकी एक आँख सूजकर बंद है, बूट की ठोकर लगी होगी। वह जमीन पर इधर-उधर दोनों हाथ फेर रहा है, कुछ तलाशते हुए हाथ। उसका एक हाथ पत्थर पर पड़ा। उँगलियाँ पत्थर पर कस गयीं। दूसरे हाथ से घुटनों पर जोर दिया, पूरा खड़ा होने के लिए। उसका जिस्म झूल रहा है। अफसर की पीठ उसकी तरफ है। उसका पत्थर पकड़ा हाथ हवा में उठना शुरू हुआ। सिपाही लपका, उसके उठते हाथ को पकड़ा, पत्थर छीनकर नीचे फेंका और दबी और लगभग रो रही आवाज में घुड़का, "पागल हो गए हो!" अफसर की तरफ इशारा करके बात पूरी की, "वह कुत्ते का बीज तुम्हें गोली मार देगा।"

'वह आदमी फिर जमीन पर बैठ गया, लेकिन न वह कराह रहा है, न रो रहा है। उसने अपने खाली हाथ को देखा, फिर बांह सीधी कर साँस रोकी, क्योंकि उसकी कल्पना में एक बंदूक उग आई है, जो अब उसके हाथ में है।

'रात को दूरदर्शन पर मुख्य समाचार जवान दिखने की कोशिश में अधेड़ उम्र वाली औरत ने पटा। लिपा-पुता चेहरा, बालों में सफेद फूलों का गजरा, ग्राहक को अपनी तरफ खींचने की कोशिश करती मंडी की औरत वाली मशीनी मुस्कान- 'आज देश में किसी अप्रिय घटना का समाचार नहीं।'

लेकिन ऐसे वृत्तान्त, जो हर पक्ष को संवेदित कर सकते हैं, भला कितनों तक पहुँच पाते हैं?

(पूर्व डायरेक्टर, नेशनल पुलिस अकादमी, हैदराबाद)

राष्ट्रीय

देश में वीआईपी कल्चर का भौकाल बंद हो

यूसुफ किरमानी

राष्ट्रपति रामनाथ कोविंद इस वक्त कई वजहों से चर्चा में हैं। खूब मज़ाक़ उड़ रहा है। इतना मज़ाक़ शायद ही किसी राष्ट्रपति का उड़ा हो। हम उनके उस बयान पर टिप्पणी नहीं करना चाहते, जिसमें उन्होंने कहा था कि उनके पाँच लाख वेतन से हर महीने पौने तीन लाख आयकर कट जाता है। लेकिन मैं उस घटना के संदर्भ में बात करना चाहता हूँ जिस वजह से एक महिला की कानपुर में जान चली गई। उस महिला की मौत उसके घर के लोगों के लिए वज्रपात तो है ही लेकिन देश में जिस तरह वीआईपी कल्चर की वजह से लोगों की जान जा रही है, समय आ गया है कि उस पर बात हो।

ओलोफ पाल्मे के बारे में नई पीढ़ी ने नहीं सुना होगा। वह दो बार स्वीडन के प्रधानमंत्री रह चुके हैं। जब फरवरी 1986 में उनकी हत्या की गई तो प्रधानमंत्री थे और बस से यात्रा कर रहे थे। बस के अंदर उन्हें गोली मारी गई थी। वह चाहते तो लंबे चौड़े गाड़ियों के क़ाफिले के साथ अपने घर से दफ़्तर आ जा सकते थे। लेकिन सरकारी फिज़ूलख़र्ची रोकने के लिए उन्होंने ऐसा किया था। उनके मंत्रियों ने भी इस पर अमल किया।

भारत में क्या होता है? पद मिलते ही नेता उस पद में और उससे मिलने वाली प्रतिष्ठा में रम जाता है। यूपी-बिहार वाले इसे भौकाल टाइट शब्द बोलकर नवाजते हैं। और ऐसे लोग अगर संवैधानिक पद पा जाते हैं तो वीआईपी मानने के अलावा बौरा जाते हैं।

बौराये हुए नेताओं का वीआईपी कल्चर पिछले सात सालों में ख़त्म नहीं हुआ लेकिन यह जनता पर किस तरह भारी पड़ रहा है, उसका अंदाज़ा ताज़ा घटना से लगाया जा सकता है।

राष्ट्रपति रामनाथ कोविंद पिछले शुक्रवार को कानपुर तीन दिन के दौरे पर आए। एक सुपर वीआईपी के शहर में होने की वजह से कानपुर पुलिस ने जनता के लिए सारे रास्ते बंद कर दिए थे। कई घंटों के लिए कानपुर शहर की सबसे बिजी सड़कों से कोई गुज़र ही नहीं सकता था। जगह-जगह जाम लग गया, जिसे खुलवाने के लिए पुलिस नहीं थी। क्योंकि उसकी तो वीआईपी ड्यूटी लगी हुई थी।

कानपुर की एक कारोबारी महिला वंदना मिश्र (आयु 50 साल) को कोविड था, शुक्रवार शाम को तबियत ख़राब होने पर उन्हें कार से अस्पताल ले ज़ाया जा रहा था लेकिन उनकी कार बीच रास्ते में फंस गई। पुलिस ने आगे रास्ता बंद कर रखा था। घर वालों ने बहुत दुहाई दी लेकिन पुलिस वालों ने रास्ता नहीं खोला। इसी जद्दोजहद में वंदना मिश्र की मौत हो गई। वंदना इंडियन इंडस्ट्रीज़ एसोसिएशन (आईआईए) की महिला विंग की अध्यक्ष थीं।

शहर में खबर फैली तो लोग और कुछ तो कर नहीं सके लेकिन सोशल मीडिया पर गुस्सा निकालने लगे। जिनके पेट भरे हुए होते हैं वो धार्मिक कार्यक्रमों में तो ज़रूर जमा हो जाते हैं लेकिन आंदोलन वग़ैरह नहीं कर पाते हैं। पर, सोशल मीडिया भरे पेट लोगों का भी मददगार बन चुका है। कानपुर के उद्योगपति गुस्से में आए और बात राष्ट्रपति के कानों तक पहुँची।

वंदना मिश्र : वीआईपी कल्चर की शिकार

फ़ौरन पीआर एक्सरसाइज़ शुरू हुई। शनिवार का पूरा दिन इसी पीआर एक्सरसाइज़ पर खर्च हुआ। ख़बर मीडिया को बताई गई कि राष्ट्रपति और उनकी पत्नी इस मौत पर बहुत दुखी हैं। उन्होंने पुलिस कमिश्नर और डीएम से ट्विटर (Twitter) पर माफ़ी माँगने और वंदना मिश्र के घर जाने को कहा है। कानपुर के पुलिस कमिश्नर असीम अरूण उनके घर गए और माफ़ी माँगी। डीएम और पुलिस कमिश्नर वंदना मिश्र की अंत्येष्टि में भी शामिल हुए। कानपुर पुलिस ने दोनों अफ़सरों का फ़ोटो परिवार के साथ ट्विटर पर जारी किया। इसके अलावा स्थानीय दरोग़ा और तीन अन्य पुलिस वालों को निलंबित कर दिया गया।

इस तरह एक सुपर वीआईपी के शहर में आने और जाम लगने से हुई मौत का पटाक्षेप हो गया।

रामनाथ कोविंद को जिस पार्टी ने राष्ट्रपति बनाया, उसका नाम भारतीय जनता पार्टी है। कोविंद कानपुर देहात के गाँव परौंख के रहने वाले हैं। राष्ट्रपति बनने से पहले जब वो परौंख से कानपुर शहर में आते थे तो उनके पास टूटी एम्बेसेडर कार भी नहीं थी। एक औद्योगिक शहर की भीड़ का अंदाज़ा उन्हें पहले से होगा। कल वो एक मिसाल क़ायम कर सकते थे, सिर्फ़ पुलिस से इतना कहते कि कहीं कोई बैरिकेडिंग न की जाए। वो चुपचाप किसी साधारण वाहन से निकल जाएँगे।

आज से सात साल पहले मोदी का वीआईपी कल्चर ख़त्म करने का जुमला भी क्या राजनीतिक था? कानपुर में हुई घटना क्या वीआईपी कल्चर का नतीजा नहीं है। राष्ट्रपति तीन दिन के दौरे पर अपने गाँव में क्या अपना वेतन और रूतबा बताने आये थे। क्या हेलिकॉप्टर के ज़रिए राष्ट्रपति को सीधे उनके गाँव में नहीं उतारा जा सकता था लेकिन फिर उसमें राष्ट्रपति वाली शान कहाँ दिखती कि कोविंद एक लंबे क़ाफिले के साथ गाँव में प्रवेश कर रहे हों, दोनों ओर जनता बांस-बल्लियों के पीछे जयजयकार कर रही हो। हेलिकॉप्टर से वो शान नहीं दिखती लेकिन किसी वंदना मिश्रा की जान ज़रूर बच जाती।

वंदना मिश्र अगर कानपुर के इलीट वर्ग से न होतीं तो शायद मीडिया इस खबर की चर्चा नहीं करता। किसी जन आंदोलन के दौरान किसी एम्बुलेंस को रास्ता न मिलने पर लोग फ़ौरन उस आंदोलन को कोसने लगते है। लेकिन वीआईपी क़ाफ़िलों के चलते होने वाली मौत अगर कोई वंदना मिश्रा जैसी हैसियत नहीं रखता है तो मीडिया के लिए उसका कोई महत्व नहीं है।

प्रधानमंत्री मोदी ने खुद को बंगाल की रैलियों के बाद 1, रेसकोर्स (लोक कल्याण) रोड के सरकारी घर में क़ैद कर लिया है। क्या राष्ट्रपति कोविंद मोदी जैसा नहीं कर सकते थे? उन्हें कोरोना काल में ही अपने गाँव जाने और परियोजनाओं की आधारशिला रखने की क्यों सूझी। वो भी तो वर्चुअली यह सब कर सकते थे।

बहरहाल, वक्त आ गया है भारतीय महानगरों में बढ़ती भीड़ के मद्देनज़र रास्ते बंद कर वीआईपी कल्चर दिखाने का रिवाज बंद हो। ताकि आम लोगों की जन्दिगी और शहरों के यातायात पर असर न पड़े। आखिर ऐसा क्या हो जाता है कि प्रधानमंत्री, मुख्यमंत्री या मंत्री बनते ही उस नेता के लिए शहर की सड़कें बंद कर दी जाती हैं?

(यूसुफ किरमानी वरिष्ठ पत्रकार और राजनीतिक विश्लेषक हैं)